पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा ७३, ता. २८-३-१९८९
शिकोहाबाद, प्रवचन नंबर P ०४

ये श्री समयसार जी नाम का परमागम शास्त्र है। समयसार का अर्थ है (शुद्धात्मा), शुद्धात्मा का नाम समयसार है अथवा समयसार का अर्थ, वाच्य, शुद्धात्मा है। 'समय' और 'सार' दो शब्द हैं। 'समय' यानि आत्मा और 'सार' यानि जिसमें भावकर्म, रागादि नहीं हैं, ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म जिसमें नहीं हैं, देह, मन, वाणी जिसमें नहीं हैं, ऐसे शुद्धात्मा को बतानेवाला शास्त्र का नाम, परमागम का नाम, समयसार है। समयसार आत्मा, समयसार शुद्धात्मा को दिखानेवाला (है), ये भारत में सर्वोत्कृष्ट शास्त्र है। जो समयसार का आत्मा के लक्ष्यपूर्वक अध्ययन करेगा, उसको आत्मदर्शन हो जायेगा और अल्पकाल में सिद्ध परमात्मा बन जायेगा। ऐसा उसमें माल भरा है।

उसकी ये कर्ता-कर्म अधिकार (है), उसमें ७३ नंबर की गाथा है।

इसमें क्या आया? शिष्य ने प्रश्न किया कि वर्तमान में मेरी दशा में अज्ञान है। अज्ञानजन्य दुःख भी है और दुःख की निवृत्ति कैसे हो जाये, उसका उपाय, उसकी विधि क्या है, कृपा करके मेरे को बताओ। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। तो उसको आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि सुन! मैंने भी मेरे गुरु को ऐसा प्रश्न किया था। मेरे गुरु ने भी मेरे को यही उत्तर दिया था। तू आज प्रश्न कर रहा है, तो मैं भी ऐसा उत्तर देता हूँ, जो गुरु-परंपरा से चली आई हुई बात है।

टीका:- **मैं**। आहाहा! इधर (आत्मा) की बात है। **मैं यह आत्मा-प्रत्यक्ष अखण्ड अनन्त चिन्मात्र ज्योति**, आत्मा, **अनादि-अनन्त नित्य-उदयरूप विज्ञानघनस्वभावभावत्वके कारण एक हूँ**; मैं एक हूँ। मैं सर्वथा एक हूँ। कथंचित् एक और कथंचित् अनेक, ऐसा आत्मा का स्वभाव में नहीं हैं।

मैं एक हूँ। आहाहा! एक हूँ का कारण बताया कि आत्मा तीनोंकाल प्रत्यक्ष है, परोक्ष नहीं है। सूर्य है, वो प्रत्यक्ष है, ऐसे ये चिदानंद आत्मा प्रत्यक्ष है। तो प्रत्यक्ष है, तो मेरे को क्यों दिखाई नहीं देता है, ऐसा प्रश्न आता है। कि तू देखता नहीं है इसलिए दिखायी नहीं देता है। तू अंतर्मुख होकर देख। देखना-जानना तो तेरा स्वभाव है और देखना-जानना तेरे को आता भी है। मगर विषय बदल दे।

ऐसा-ऐसा (बाहर) तू करता (देखता) है ना? ऐसा-ऐसा, पर को जानता है, पर को जानता है, ऐसा तो तू करता है ना? हाँ! ऐसा तो करता है। इसका अर्थ है कि मेरे पास ज्ञान और दर्शन तो है। देखना और जानना मेरे पास (है), ऐसा परिणाम भी है। अभी विषय बदल दे। परज्ञेय को जानता-देखता है तू, द्रश्य-पदार्थ को देखता है, ज्ञेयपदार्थ को जानता है। अभी विषय बदल दे, आत्मा को ज्ञेय बना ले। आहाहा!

ज्ञान तो तेरे पास है। ज्ञेय को बदल देने की वार (देर) है, देर है। (ज्ञेय) बदल दे कि मैं एक हूँ, मैं अनेक नहीं हूँ और **प्रत्यक्ष** हूँ मैं। और **अखंड**, खंडज्ञान जो है इन्द्रियज्ञान, वो मेरा स्वभाव नहीं है। मैं अखंड हूँ। कभी? तीनोंकाल अभी।

और **अनन्त चिन्मात्र ज्योति**, बेहद सामर्थ्य उसका (है), सामर्थ्य, ज्ञान का। चिन्मात्र यानि ज्ञानमात्र आत्मा, वो अनंत-अनंत-अनंत बेहद सामर्थ्य से भरा हुआ है। आत्मा को तो जाने, लोक को जाने, अलोक को भी जाने, इसके आगे बहुत कितना भी पदार्थ हो, तो जानना उसका स्वभाव है। यानि अनंत शक्ति है जानने की, आत्मा में अभी है। चिन्मात्र ज्योति, राग मेरे में नहीं है। ज्योतिस्वरुप है आत्मा, ज़ळहळ ज्योति है आत्मा, वर्तमान में है, प्रगट आत्मा।

और दूसरा ये **अनादि-अनंत** है। भूतकाल में था और वर्तमान में है, भविष्यकाल में रहने वाला है। आत्मा अविनाशी है, आत्मा का नाश होता नहीं है। देह मरता है, मगर मैं मरता नहीं हूँ। आहाहा! ये देह छूट जाता है, तो परमाणु खिर जाता है। आहाहा! मगर मैं तो अभेद सामान्य हूँ। तो मेरे में से कोई गुण बाहर निकलता नहीं हैं। बिखरता नहीं हूँ, मैं अभेद सामान्य टंकोत्कीर्ण परमात्मा हूँ, अनादि-अनंत हूँ।

नित्य-उदयरूप है। आत्मा नित्य, हमेशा, प्रगट, उदय यानि प्रगटरूप है। प्रगट होता है, वो दूसरी चीज़ है और प्रगट है, वो दूसरी चीज़ है। प्रगट है वो जीवतत्त्व है। प्रगट है वो मैं हूँ और प्रगट होता है, प्रगट होता है, वो तो नाश होता है। जिसकी (नई) प्रगटता हो, उसका तो नाश होता है। मैं तो प्रगट होता नहीं हूँ, तो नष्ट भी होता नहीं (हूँ)। जो प्रगट हो, तो नाश भी हो जावे। पर मैं तो अविनाशी प्रगट वर्तमान में हूँ। आहाहा!

नित्य-उदयरुप, एक-एक शब्द की कीमत है। आहाहा! दिगम्बर संत नित्य-आनंद का भोजन करनेवाले हैं, दुःख को भोगनेवाले नहीं हैं। मेरे साधु दुःख के भोक्ता नहीं हैं। हमेरे साधु आनंद का भोजन करते हैं, उनको हम नमस्कार करते हैं। आहाहा! आनंद-भोजी, नित्यानंद-भोजी, अतीन्द्रिय-आनंद। आहाहा! ये कल्पना के सुख की बात नहीं है। आत्मिक-आनंद का अंदर में... एकाग्र ध्यान होकर उपयोग अंदर में लगाता है, तो निर्विकल्पध्यान के क्षण और पल में सप्तम गुणस्थान, अप्रमत्त दशा आती है। ओहोहो! और दिन में तो नींद होती ही नहीं है। रात को पिछले पहर में तीन-चार-पाँच, चार बजे, थोड़ा पौने सेकंड की नींद होती है। एक सेकंड (भी नहीं)। आहाहा! हमारे मुनिराज अप्रमादी हैं, प्रमादी नहीं हैं हमारे मुनिराज। आहाहा! सावधान हैं, आत्मा में सावधान हैं। आहाहा! 'समयवर्ते सावधान', लग्न (शादी) में आता है कि नहीं? हमारे वहाँ तो बोलते हैं। इधर भी ऐसा ही बोलते हैं। अच्छा! समयवर्ते सावधान! कन्या को लाओ, वो कहते हैं ना? हाँ! फेरे का समय हो गया है।

ये मोक्ष लक्ष्मी आने का समय हो गया है। सावधान हो जा अभी, मैं परमात्मा हूँ। आहाहा! मैं तो नित्यानंद परमात्मा हूँ। मैं तो नित्य प्रगट हूँ। प्रगट होता है, वो परिणाम है। मैं परिणाम नहीं हूँ, मैं तो अविनाशी-तत्व हूँ। आहाहा! ऐसा आत्मा का ध्यान कभी किया नहीं है। एक समय में जो ध्यान कर लेवे तो अल्पकाल में मुक्ति हो जाती है। कोलकरार हो जाता है, किसी को पूछने की ज़रूरत नहीं पड़ती है।

नित्य-उदयरूप, अभी आगे **विज्ञानघनस्वभावभावत्वके कारण एक हूँ;** विज्ञानघन है जो, (क्योंकि) ज्ञान में राग का प्रवेश नहीं है। घन पदार्थ होता है ना घन, घन में किसी का प्रवेश नहीं है। ऐसे विज्ञानघन, विशेषे-ज्ञानघन-घट। आहाहा! ये अघटित घाट पदार्थ, टंकोत्कीर्ण परमात्मा, जिसमें ज्ञान

और आनंद भरा है, असंख्यात प्रदेश में छलोछल भरा है। छलोछल भरा है, एकाग्र होता है तो वो बाहर आता है, आनंद। अंदर में तो है और एकाग्र होता है तो, वो बाहर आता है।

ऐसा कोई करता है ना? अपने क्या? सुगंधित पदार्थ को तो दबाता है ना? दबावे ना तो वो सुगंधित पदार्थ का फुहारा होता है ना? फुहारा। ऐसे जब ऐसा करता है तो सुगंध-सुगंध फ़ैल जाती है। समझे? ऐसे जब उपयोग आत्मा में एकाग्र हो जाता है, तो दबाता है ध्यान में, तो अंदर से जो आनंद है वो बाहर आ जाता है। आहाहा! इतने आनंद के भोगी मुनिराज हैं। अल्प-आनंद गृहस्थ को भी, ऐसा ही आनंद आता है जैसा मुनिराज को आता है, ऐसा ही आनंद। सिद्ध जैसा आनंद है, प्रमाण कम है, प्रमाण कम है।

शक्कर का जो गणपण (मिठास) होती है, उससे ५५० गुणा सेक्रीन का स्वाद (है), वो है मिठास। सेक्रीन की मिठास ५५० गुणा ज़्यादा है। समझे? शक्कर में थोड़ा कम है। ऐसे सिद्ध परमात्मा सेक्रीन रूप हैं। पूरे आनंद भोगते हैं और गृहस्थ सम्यग्दृष्टि को थोड़ा आनंद (आता है), मगर जाति एक है। मात्रा कम है, मगर जाति एक है। आहाहा!

ऐसे आत्मिक आनंद के भोजन करनेवाले मुनिराज हैं, उनको हम नमस्कार करते हैं। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं, ऐसा पाठ हैं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। धवल में (ऐसा) पाठ है। णमो अरिहंताणं बोलते है ना भैया? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। भूतकाल में अरिहंत हो गए, उनको नमस्कार करता हूँ। वर्तमान में अरिहंत हैं, उनको नमस्कार करता हूँ और भविष्य में अरिहंत होनेवाले हैं (उनको भी नमस्कार)। भले अभी निगोद में (या) नरक में हों। श्रेणिक महाराजा हैं या नहीं? तो भी भविष्य के अरिहंत को मैं नमस्कार करता हूँ। जैनधर्म गुणवाचक है, गुण ग्राही है। व्यक्ति की बात नहीं है।

तो विज्ञानघन स्वभाव, इसमें राग का प्रवेश नहीं है। व्यवहार-रत्नत्रय के परिणाम का प्रवेश भगवान आत्मा में नहीं है। आहाहा! कि कथंचित् तो है कि नहीं राग? कि सर्वथा नहीं है। आहाहा! ऐसा कहा, **मैं एक हूँ**। एक बोल आया।

दूसरा बोल। अभी शुद्ध का बोल आता है, शुद्ध। आत्मा **शुद्ध है**। कभी? अभी। तीनोंकाल शुद्ध है। शुद्ध जाने आत्मा को, वो शुद्धात्मा को प्राप्त करे। मैं शुद्ध हूँ, ऐसे अंतर्दृष्टि करके शुद्धात्मा का दर्शन होता है, ज्ञान होता है, श्रद्धान होता है, आचरण होता है, तो पर्याय में, अवस्था में, परिणाम में संवर-निर्जरा प्रगट हो जाती है। शुद्धोपयोगदशा प्रगट होती है। तो मैं शुद्ध हूँ, इसका बोल ज़रा सूक्ष्म है। मेरा आत्मा है, (वो) देह, मन, वाणी का करने वाला नहीं है, इसलिए शुद्ध है। आत्मा आठ प्रकार का कर्म बाँधता ही नहीं है, इसलिए शुद्ध है। अभी आठ कर्म का बंधन आत्मा में है ही नहीं। कभी? अभी। आठ कर्म का अभाव तो सिद्ध अवस्था होती है, तब (कर्म) रहित होता है। वो रहित होता है और अभी रहित है। रहित है, ऐसी जिसको श्रद्धा आवे, वो रहित हो जाता है।

अभी मैं आठ कर्म से रहित हूँ, ऐसा जिसको ज्ञान और श्रद्धान प्रगट होता है, उसको अल्पकाल में आठ कर्म की निर्जरा हो जाती है। परमात्मा हो जाता है। और आठ कर्म का मैं कर्ता तो नहीं हूँ, मगर वो कर्म-बंधता है, उसमें मैं निमित्त भी नहीं हूँ। अच्छा ये क्या? ये निमित्त के बिना ही कर्म-बंध

जाता है? कि तू निमित्त नहीं है। निमित्त कोई दूसरी चीज़ है, निमित्त दूसरी चीज़ है। निमित्त कौन है? कि राग-द्वेष का परिणाम वो कर्म-बंध में निमित्त है। मैं तो राग-द्वेष से रहित परमात्मा हूँ, मैं निमित्त नहीं हूँ। आहाहा! उपादान से (तो) कर्ता नहीं और निमित्त कर्ता भी नहीं। आहाहा! रविन्द्रबाबू!

आत्मा कर्म-बंध में निमित्त नहीं हैं। दाल के व्यापार में भी आत्मा निमित्त नहीं है। ये कपड़े का व्यापार किसी को हो, तो भी वो निमित्त नहीं है। आहाहा! आत्मा में परपदार्थ के परिणमन में निमित्त होना, यह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा तो ज्ञाता है। आहाहा! कर्म-बंध में निमित्त भी नहीं है और ये हाथ हिलता है और पग (पाँव) चलता है, उसका सीधा कर्ता तो नहीं है, मगर निमित्त-कर्ता भी नहीं है। उसका ज्ञाता रहता है, उसका नाम व्यवहार है। आत्मा का ज्ञाता निश्चय, परिणाम का ज्ञाता व्यवहार है। बाकी कर्ता तो है ही नहीं, इसलिए आत्मा शुद्ध रह गया। और जो कर्ता मानता है, उसकी द्रष्टि में शुद्धात्मा आता नहीं है। उसकी द्रष्टि में राग, आश्रव आता है। आहाहा! राग को आत्मा मान लेता है।

अभी दो बात किया। नोकर्म का कर्ता नहीं और जड़कर्म का भी कर्ता नहीं। सुशील कुमार! हें? आहाहा! सीधा-कर्ता तो नहीं, मोटर मैं चलाता तो नहीं, मगर मोटर चलती है स्वयं, चलती है स्वयं, मैं तो निमित्त हूँ। सुशील भैया कहें कि मैं निमित्त हूँ, तो वो अज्ञानी बन जाता है। मैं निमित्त नहीं हूँ, मैं तो चलती मोटर को जाननेवाला हूँ। आहाहा! लेने को आया था ना वो।

ये संतो की बात कोई अलौकिक है। संतो की बात! आहाहा! आचार्य भगवान फरमाते हैं कि तूने काम-भोग-बंधन की कथा तो सुनी। मैं मोटर चलाता हूँ, आहाहा! मैं व्यापर करता हूँ, मैं देह, मन, वाणी की क्रिया करनेवाला हूँ, मैं शुभाशुभभाव का करनेवाला हूँ, ऐसी काम-भोग-बंधन की कथा तूने सुनी है। मगर आत्मा कर्ता नहीं, ज्ञाता है, वो बात तूने आज तक सुनी नहीं। रूचिपूर्वक सुनी नहीं है। सुनता तो है, मगर इधर सुनता है और इधर से निकाल देता है। इधर सुनकर इधर (अंदर) नहीं आता (है)। पिंकी! सुनता तो है, मगर इधर सुनकर (अंदर नहीं आता है)। दो कान हैं ना? एक से सुनने में आवे, दूसरे में से जावे। दो होल (छेद) हैं ना! क्या है? होल (छेद)। दो होल (छेद)। जो एक होल (छेद) हो, तो अंदर उतारे। एक होल (छेद) नहीं हैं। दो हैं। समझे? अरे! अलौकिक बात है! इधर तो (एक कान से) सुनता है और इधर से (दूसरे कान से) निकाल देता है और बाद में दुकान पर चला जाता है।

सुन! मगर दो होने पर भी जो रूचिवाला जीव है, वो इधर से (सुनकर) सीधा अंदर में उतार देता है। ओहोहो! मैं तो शुद्ध हूँ। शुद्ध का कारण क्या कि मैं कर्ता नहीं हूँ, मैं केवल ज्ञाता हूँ। प्रभु! मैं ज्ञायकरूप केवल जाननहार हूँ। मैं करनेवाला नहीं हूँ। स्वयं जड़-चेतन की क्रिया हो रही है, वो मेरी अपेक्षा के बिना हो रही है। आहाहा! नींद में ये मोटर भी चलती है, प्लेन भी चलता है और ये ट्रेन भी चलती है। चलता है, ये सोता है, तो चलता है कि नहीं?

मुमुक्षुः- ऊँघता है माने सोता है।

उत्तरः- सोता है, तो भी चलता है, जड़-चेतन का परिणाम। आहाहा!

एक दफ़े एक बार कहा था कि नहीं? कुत्ते का दाखिला (दृष्टांत) नहीं दिया?

मुमुक्षुः- इधर नहीं दिया।

उत्तर:- इधर नहीं दिया? अच्छा! देखो! ये आत्मा शुद्ध है तो इसका अर्थ क्या? कि कर्ता नहीं है, इसलिए शुद्ध है। वो बेस (नींव) है। आत्मा शुद्ध क्यों है? कि कर्ता नहीं है इसलिए शुद्ध रहता है, रहता है। उसको मानता है, वो शुद्ध हो जाता है। शुद्ध हूँ ऐसा मानता है, तो शुद्ध हो जाता है।

तो एक दफ़े ऐसा बनाव बना कि कुत्ता है ना, कुत्ता। वो गाड़ी के नीचे चलता है ना? बैलगाड़ी के नीचे चलता है। तो उसका माथा थोड़ा-थोड़ा कभी टकराता है। तो अभिमान हो गया कि गाड़ी मैं चलाता हूँ। बैलगाड़ी मैं चलाता हूँ। मैं चलाता हूँ, मेरे से ही चलती है। तो अभिमान तो था। हें? मगर इधर बनाव क्या बन गया? की उसको खुजली आयी। खुजली आये तो-तो रुकना ही पड़े। दूसरा उपाय ही नहीं हैं। तो तो वो रुक गया। रुक गया तो ऐसा करने लगा। तो गाड़ी तो चलने लगी। तो (उसको लगा कि) ये क्या है? गाड़ी तो मेरे से चलती थी। अभी मैं रुक गया तो बैलगाड़ी भी रुकनी चाहिए। मगर रुकी नहीं है, चलती है गाड़ी। आहाहा! अभिमान निकल गया, वो कुत्ते को सम्यग्दर्शन हो गया। कुत्ते को सम्यग्दर्शन होता है। हों! ऐसा नहीं है। चार गति में संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव, आत्मा का अनुभव करता है। अपने सिंह महाराज को अनुभव हुआ कि नहीं? महावीर के जीव, सिंह पर्याय में तिर्यंच में थे कि नहीं?

मुमुक्षु:- सिंह पर्याय। बहुत बढ़िया!

उत्तर:- हाँ। हुआ कि नहीं? ये जो है ना स्वांग है। तिर्यंच और मनुष्य और स्त्री और पुरुष, वो तो स्वांग है। शक्कर, मिट्टी के बर्तन में हो, शक्कर, या सोने के बर्तन में हो, तो कोई स्वाद में फर्क पड़ता नहीं है। ऐसे तिर्यंच का बर्तन हो या मनुष्य का बर्तन हो या देव का बर्तन हो, चिदानंद आत्मा तो ऐसा का ऐसा ज्ञान-दर्शन पूर्ण है। आहाहा! कुत्ते का अभिमान छूट गया और अनुभव हो गया।

मुमुक्षु:- वो खुजली के कारण खड़ा रहा।

उत्तर:- खड़ा रहना पड़ा, खड़ा रहना पड़ा। कि क्या बात है? अनंतकाल से मैं दुःख (को) भोगता हूँ, दुःख की निवृत्ति तो होती नहीं है। तेरा अभिमान है।

हूँ करूँ, हूँ करूँ ए ज अज्ञानता, शकट नो भार जेम श्वान ताणें।

सृष्टि मंडाण ऐनी पेरे कोई योगी योगीश्वरा जाणे।।

उसका हिंदी क्या है? बोलो कोई। हूँ करूँ, हूँ करूँ ए ज अज्ञानता।

मुमुक्षु:- मैं करूँ, मैं करूँ ये ही अज्ञानता, गाड़ी का भार जैसे कुत्ता खींचता है।

उत्तर:- मैं करूँ, मैं करूँ यही अज्ञानता, गाड़ी का भार जैसे कुत्ता खींचता है। 'सृष्टि मंडाण ऐनी पेरे' अपने-आप सृष्टि अपने परिणमनरूप होती है। उसमें क्रियावती-शक्ति, भाववती-शक्ति जड़-चेतन में है। मैं करूँ तो वो क्रिया होवे (ऐसा नहीं है)। आहाहा! रोटी करूँ तो रोटी बने, मेसूब (मैसूरपाक) मैं करूँ तो होवे, शारदाबेन? ऐसा नहीं है। और कांताबेन रोटी करे, तो होवे, ऐसा नहीं है। आज तक किसी ने रोटी बनाई ही नहीं है, आज तक किसी कुम्हार ने घड़ा बनाया ही नहीं है। कि बिना निमित्त, बिना निमित्त बन जाता है? कि हाँ! उसमें शक्ति है, बनने की। उसमें बनने की शक्ति है। तेरी अपेक्षा वो रखता नहीं है। वस्तु की शक्ति पर की अपेक्षा रखती नहीं।

मुमुक्षु:- ये भाई 'हाँ' पाड़ते हैं। ये भाई! माइकवाले 'हाँ' बोलते हैं, खुश होते हैं।

उत्तर:- माइकवाला (भाई) काम कर ले। आत्मा हैं, सब आत्मा हैं। आहाहा! ऐसी बात है। अभिमान टल जाये। छोड़ दे अभिमान, तू परमात्मा तो है ही। तू परमात्मा तो है ही। अभिमान छूटता है, तो परमात्मा हो जायेगा। बस इतनी ही देर है। अभिमान छोड़ दे। आहाहा! सोनगढ़ के संत ने कोई त्याग की बात किया है कि नहीं? कि हाँ! त्याग की बात जो उसने किया है, वो सुनी नहीं है तूने। अभिमान का त्याग और निरभिमान का ग्रहण। ग्रहणपूर्वक-त्याग की विधि है। आहाहा!

एक दफ़े मैं दिल्ली गया था, तो बीस दिन वहाँ रहा। पंद्रह-बीस दिन। तो प्रेमचंदजी जैन, जैनावोच कंपनीवाला। नाम सुना होगा? जैनावोच कंपनीवाला, बड़ी पार्टी है। तो उसके वहाँ ठहरे थे। तो उसकी माताजी तभी ज़िंदा थीं, अभी तो गुज़र गयीं। तो लालमंदिर में व्याखान था, सब आते थे। और वो दो-तीन भाई भी आते थे। उसके घरवाले भी सब आते थे। तो एक दफ़े कहा कि जैनदर्शन में ग्रहणपूर्वक-त्याग की विधि है। ग्रहण-निरपेक्ष त्याग, वो अधर्म है। और ग्रहणपूर्वक-त्याग, वो धर्म है। ग्रहणपूर्वक-त्याग, ये विधि है। सम्यग्दर्शन का ग्रहण होता है, तो मिथ्यात्व का त्याग होता है। क्षमा का ग्रहण होता है, तो क्रोध का त्याग हो जाता है। क्षमा को ग्रहण करने से क्रोध का त्याग होता है। ऐसा क्रोध छोड़ो, क्रोध छोड़ो, आहाहा! ऐसी बात नहीं है। ऐसे वीतरागभाव का जब ग्रहण होता है, तो राग का त्याग हो जाता है। जब अतीन्द्रियज्ञान का ग्रहण होता है, तो इन्द्रियज्ञान का स्वयं त्याग होता है। स्वामित्वबुद्धि छूट जाती है। आहाहा! ग्रहणपूर्वक-त्याग की विधि जैनदर्शन में है।

आप सब्ज़ी लेने जाओ, तो पैसे आप दे देते हैं। पैसे का त्याग किया और अब सब्ज़ी नहीं चाहिए, ऐसा कोई कहता है? वो ग्रहणपूर्वक पैसा देता है। वहाँ तो ग्रहण (पहले) करता है और पैसे बाद में निकालता है। पहले तो थैली में शाक (सब्ज़ी) ले लेता है, शाक अर्थात् सब्ज़ी। बाद में, जेब में से पैसा देता है। पहले पैसा नहीं देता है। पहले ग्रहण करता है। हाँ! बाद में पैसा देता है।

ऐसे ज्ञान का ग्रहण होने से अज्ञान का त्याग होता है। ऐसे आत्मज्ञान का जब ग्रहण होता है कि मैं चिदानंद आत्मा हूँ, आहाहा! अपने श्रुतज्ञान की पर्याय के द्वारा जब ज्ञायक का दर्शन होता है, तो ज्ञान का ग्रहण हुआ, तो अज्ञान का त्याग हो गया। यानि अज्ञान प्रगट नहीं हुआ, उसका नाम त्याग है। सचमुच अज्ञान का त्याग नहीं करता है। सूक्ष्म बात है! अज्ञान का त्याग नहीं करता है। ज्ञान का ग्रहण हुआ तो अज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ, उसका नाम अज्ञान का त्याग किया है, ऐसा कहा जाता है। जैसे अंधकार है, अंधकार, रूम में। समझे? तो बटन दबाया तो लाइट हो गया। लाइट हो गया तो अंधकार का त्याग किया? अंधकार प्रगट ही नहीं हुआ। प्रकाश प्रगट होता है, आत्मज्ञान प्रगट होता है, तब अज्ञान का उदय होता ही नहीं है, तो अज्ञान का त्याग किया, ऐसा कहने में आता है।

इसलिए भगवान आत्मा शुद्ध है। देह, मन, वाणी का करनेवाला नहीं है। दाल का व्यापार करनेवाला नहीं है। रोटी की क्रिया करनेवाला आत्मा नहीं है। मेसूब (मैसूरपाक) का करनेवाला आत्मा नहीं है। आहाहा! भाषा बोलनेवाला आत्मा नहीं है। आहाहा! भाषा बोलनेवाला जुदा और जाननेवाला जुदा। राग करनेवाली अलग चीज़ और जाननेवाली अलग चीज़ है। आहाहा! राग करनेवाला परिणाम है, मैं तो ज्ञान करनेवाला हूँ। आत्मा का ज्ञान करते-करते भान हो गया कि राग की क्रिया मेरी नहीं है। राग ज्ञान का ज्ञेय है, कर्ता का कर्म नहीं है। कर्ता का कर्म ज्ञान होता है, तब ज्ञान का ज्ञेय राग हो जाता

है।

ये सब लॉजिक की बात है, न्याय से समझ में आवे।

जब आत्मा का ज्ञान होता है, तब ज्ञान आत्मा का कर्म और आत्मा ज्ञान का कर्ता। और थोड़ा राग रहता है, तो उसका ज्ञाता रहता है। कर्ता बनता नहीं है। स्वामित्वबुद्धि छूट जाती है। मैं शुद्ध हूँ, क्योंकि मैं कर्ता नहीं हूँ। अभी द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का कर्ता नहीं हूँ। आहाहा!

छोटी-छोटी लड़की भी लिखती है। बोलो! ये लड़की लिखती है। बहुत अच्छा है! लिखना चाहिए। उसके पास में एक और छोटी लड़की है, वो भी लिखती है। आहाहा! अच्छी बात है! भगवान आत्मा हैं ना। लड़की कहाँ है वो? लड़की नहीं है। मैं भगवान हूँ, मैं परमात्मा हूँ। आहाहा! मैं लड़की हूँ, (ऐसा) नहीं बोलना। मैं परमात्मा हूँ। तेरी मम्मी पूछे, तू कौन है? (तो) क्या जवाब देगी? मैं परमात्मा हूँ। आहाहा! ऐसा बोलना। हाँ!

मैं शुद्ध हूँ, क्यों? (क्यों) कि मैं करनेवाला नहीं हूँ। मैं जाननेवाला हूँ, इसलिए मैं शुद्ध हूँ। मैं करनेवाला नहीं हूँ। वो दो बात तो कही। अभी, सूक्ष्म अंदर का शुभाशुभभाव होता है ना, पुण्य-पाप का परिणाम, उसका करनेवाला आत्मा नहीं है। जाननहार है, करनार (करनेवाला) नहीं है। आहाहा! जो जानता है वो कर्ता नहीं और कर्ता है वो जानता नहीं। आहाहा! ऐसी गाथा है! बोलो!

मुमुक्षुः-

करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जाने सो करे नहीं कोई, करे सो जाने नहीं कोई।।

उत्तरः- आहाहा! जैसे चक्षु है ना चक्षु, आहाहा! ये द्रश्य-पदार्थ को दूर रहकर देखती है, मात्र देखती है। कथंचित् द्रष्टा और कथंचित् कर्ता, ऐसे चक्षु में नहीं है, चक्षु में नहीं है। सर्वथा द्रष्टा है। ऐसे भगवान आत्मा के अंदर ज्ञान-दर्शन दो चक्षु हैं, ज्ञान और दर्शन दो चक्षु हैं। उन चक्षुओं के द्वारा, अंतर-चक्षु के द्वारा, वो केवल आत्मा को जानता ही है। आत्मा में उत्पन्न हुआ परिणाम, उसका करनेवाला आत्मा नहीं है। आहाहा!

शुभाशुभभाव उत्पन्न हो भले, मगर मैं करनेवाला नहीं हूँ। जैसे मोटर का कर्ता नहीं है, ऐसे ही शुभाशुभभाव का आत्मा कर्ता नहीं है। जाननेवाला है। मोटर भी चले (आत्मा) जाने, हाथ भी हिले (आत्मा) जाने, पैर चले उसको (आत्मा) जाने, राग हो उसको (आत्मा) जाने। जाने, जाने और जाने। प्रतिमा के सामने दर्शन करने को खड़ा हुआ, तो अल्प शुभराग आता है, प्रशस्त, भक्ति का राग। भक्ति के राग को आत्मा के लक्ष्यपूर्वक जानता है। आत्मा का लक्ष्य छोड़कर वो जाने, तो अज्ञान है। जान ही नहीं सकता। आत्मा के लक्ष्यवाला ही जान सकता है। जो आत्मा का लक्ष्य छूट जाता है, तो कर्ता बन जाता है, शुभभाव का। आहाहा! आत्मा शुद्ध क्यों रहा? कि शुभाशुभभाव होता तो है, होता है और करनेवाला नहीं है, जाननेवाला रहता है (इसलिए शुद्ध है)। आहाहा!

अभी इससे सूक्ष्म बात इधर है। **(कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरणस्वरूप) सर्व कारकोंकी समूहकी प्रक्रियासे पारको**, आहाहा! आत्मा सूक्ष्म है और ये जो इन्द्रियज्ञान है ना, ये स्थूल है। इन्द्रियज्ञान है ना, स्थूल है। स्थूल-ज्ञान से आत्मा जानने में नहीं आता।

आत्मा सूक्ष्म है, सूक्ष्म है। तो वो अतीन्द्रियज्ञान ज्ञानमयी आत्मा है, तो अतीन्द्रियज्ञान जब प्रगट, नया, होता है, उसके द्वारा आत्मा का अनुभव होता है। पर अतीन्द्रियज्ञान कब प्रगट होवे? कि कर्ताबुद्धि छूटे तब। परिणाम प्रगट होता है, तो भी परिणाम को करने वाला नहीं हैं। ज्ञान प्रगट होता है, तो भी ज्ञान पर्याय का करने वाला नहीं है। जाननेवाला रहता है। आहाहा! शुभाशुभभाव तो दूर रहा, मगर जो षट्कारक के परिणाम में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण... समझे? आहाहा!

७३ गाथा में, ये परिणाम का कर्ता परिणाम आया, परिणाम का कर्ता परिणाम आ गया, ये आगम कथन है। समझे? ऐसे १३ नंबर की गाथा में भी आचार्य भगवान ने कहा भूतार्थनय से तू नवतत्व को जान। यानि मैं करनेवाला नहीं हूँ। क्रिया तो होती है। क्रिया होने पर भी क्रिया का कर्ता नहीं है, क्योंकि एक क्रिया का दो कर्ता नहीं होता है। परिणाम, परिणाम को भी करे और आत्मा भी परिणाम को करे, ऐसा द्विक्रियावादी आत्मा नहीं है। ये अध्यात्म की बात है, द्विक्रिया, अंदर में। दो द्रव्य की क्रिया करनेवाले, तो द्विक्रियावादी हैं, तो अज्ञान है। दो द्रव्य की एकता, उसमें जीव और अजीव की एकता हो गई और इसमें आत्मा और परिणाम की भिन्नता नहीं रही, तो कर्ता बने तो। वो भिन्नता ही है, इसलिए परिणाम का कर्ता परिणाम ही है। मैं कर्ता नहीं हूँ क्योंकि परिणाम सत् है। सत् अपने आप होता है और वो अज्ञानी कहता है कि परिणाम को मैंने किया। तेरा अज्ञान है भैया! धर्म नहीं होगा। आहाहा!

धर्म तो जब मैं ज्ञाता हूँ और ज्ञाता को जब जाने (तब धर्म होगा)। ज्ञेय को जाने, वहाँ तक धर्म नहीं। परिणाम की कर्ताबुद्धि रखे तो धर्म नहीं और मात्र परिणाम को जानने में रुक जाये, तो भी धर्म होता नहीं है। आहाहा! जब परिणाम का लक्ष्य छोड़कर, ये भगवान को जब ज्ञान जानता है, तब धर्मदशा प्रगट होती है, धर्मध्यान प्रगट होता है, संवर, निर्जरा मोक्षमार्ग प्रगट हो जाता है। वो कैसे खबर पड़े कि धर्म हुआ? कि अतीन्द्रिय आनंद आता है। आहाहा! मेंढ़क को भी आनंद आता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कोई भी गाय, भैंस, तिर्यंच संज्ञी (कोई भी)। पाँच-इंद्रिय वाला होना चाहिये। उसमें भेदज्ञान करने की शक्ति, मन वाले प्राणी में होती है। पाँच इन्द्रियों में भेदज्ञान (करने) की शक्ति नहीं है।

तो मैं शुद्ध हूँ, क्यों? मैं शुद्ध क्यों हूँ? कि शुद्ध पर्याय का करने वाला नहीं हूँ, इसलिए मैं शुद्ध हूँ। आहाहा! अलौकिक, अलौकिक बात है! आहाहा! इसमें लिखा है, उसका अर्थ है। मेरे घर की बात नहीं है। लिखा है, देखो! वाद-विवाद की फुर्सत ही कहाँ है, दाल के व्यापार में? दूसरे को कपड़े के व्यापार में, किसी को स्पेयर पार्ट व्यापार में? आहाहा! पैसा से सुख मान रखा है। पैसा में सुख है नहीं। अमेरिका (में) तो बहुत करोड़ों अरबोंपति हैं। उनको नींद नहीं आती है, तो गोली लेनी पड़ती है। समझे? रात को गोली लेनी पड़ती है। जो पैसा से सुख हो, तो घसघसाट नींद आनी चाहिए। हें? पैसे से सुख होता नहीं। आहाहा!

केन्सर हो गया। अरे! पैसा तो बहुत है। बचा ले, तेरा पैसा केन्सर को बचा ले। ठीक कर दे। नहीं ठीक कर सकता है। आयुष्य बचा सकता कोई नहीं, देव, देवेन्द्र, जिनेन्द्र (कोई नहीं)। आहाहा! जिस समय आयुष्य छूटता है, उस ही समय फटाक (तुरंत शरीर) छूट जाता है। इधर का इधर रह

जाता है। वो साथ में (या तो) अज्ञान ले जाये या तो आत्मज्ञान ले जाये। ये दो ले (जाने) की छूट है। इधर से दो ले जाने की परमिट है। इतनी परमिट है। कुदरत की परमिट है। कोई सरकार की परमिट नहीं है। आहाहा! कहाँ तो आत्मज्ञान करके सम्यग्दर्शन- ज्ञान-चारित्र का परिणाम साथ में ले जाये। विग्रहगति में सुख भोगता है, विग्रहगति में। दो-तीन समय लगता है, (जब) देवगति में जाता है सम्यग्दृष्टि इधर से। देवगति में जाता है। (कोई) और गति में नहीं जाता है और स्त्री-पर्याय नहीं बंधती उसको। पुरुष पर्याय बंधती है। देव बनता है, देवी नहीं बनता। तो बीच में विग्रहगति आती है ना, विग्रहगति। समझे? बीच का रास्ता। वहाँ की उत्पत्ति और यहाँ छूटे, तो बीच में जो विग्रहगति है, उसमें वो आनंद का भोजन करता है। देह नहीं, मन नहीं, वाणी नहीं, पैसा नहीं। आहाहा! मगर आत्मा तो है कि नहीं? आत्मा का आनंद आत्मा के आश्रय से होता है। पर के आश्रय से नहीं होता है। पर के आश्रय से तो दुःख होता है। भैया! आहाहा!

तो मैं शुद्ध हूँ, इसका अर्थ क्या? कि शुद्ध पर्याय, जो संवर-निर्जरा प्रगट होती है ना, उसका मैं कर्ता नहीं हूँ। क्यों कर्ता नहीं हूँ? कि एक परिणाम का दो कर्ता नहीं होता। परिणाम का कर्ता परिणाम भी हो और द्रव्य भी उसको करे, वो द्विक्रियावादी का दोष आ जाता है। आहाहा! अध्यात्म की द्विक्रिया है। आहाहा!

मुमुक्षुः- एक परिणाम के कर्ता द्रव्य दो ही, दोऊ परिणाम एक द्रव्य को धरत है।

उत्तरः- धरत हैं। आहाहा! वो, वो तो वो आगम-पद्धति (है)। वो दो द्रव्य की भिन्नता की बात है। अध्यात्म-पद्धति में तो, परिणाम का कर्ता परिणाम है। ऐसा जानता है कि परिणाम का कर्ता परिणाम है, तहाँ तक ज्ञान नहीं होता है। वो परिणाम का जानना बंद करके अपरिणामी को जानता है, तो ज्ञान प्रगट हो जाता है।

हाँ! परिणाम का कर्ता परिणाम है, इतना ख्याल आया। इतना ख्याल तो आया कि मैं करनेवाला नहीं हूँ। मगर मैं जाननेवाला हूँ, तो जाननेवाला है, तो किसको जानने से धर्म हो? परिणाम को जानने से धर्म नहीं होता है। भगवान आत्मा को जानने से धर्म होता है। भगवान का दर्शन करे, तो धर्म होता है। ऐसा है ना? भगवान का दर्शन करे तो धर्म होता है। ये (अंदर के) भगवान का दर्शन करे, तो धर्म होता है। मंदिर में जो प्रतिमा, जिन-प्रतिमा, जिन-सारखी... जब दर्शन करने जाता है ना, तब वो भगवान हमको मुख (से कहते हैं), वहाँ से आवाज़ निकलती है (कि) मेरी ओर मत देख, तू तेरी ओर देख। मैं इधर (अंदर) देखता हूँ, तू भी उधर (अंदर) देख। (तू) मेरी तरफ क्यों देखता है? आहाहा! 'ना' बोलते हैं भगवान, मेरे सामने देखने से। आहाहा! आत्मदर्शन नहीं होगा। मेरे सामने देखकर बाद में तेरे सामने तू देख, तो दर्शन होगा।

एक दफ़े ऐसा हुआ, इंदौर मैं गया था, इंदौर। टाइम हो गया कि देर है? इंदौर गया था। तो बाहर में परा में, परा कहते हैं? थोड़ा १०-१५ मील दूर, ऐसा-ऐसा गाँव होता है ना।

मुमुक्षुः- छोटा-छोटा गाँव।

उत्तरः- छोटा-छोटा गाँव है, थोड़े-थोड़े दूर मकान होते हैं। तो वहाँ भगवान का मंदिर बना था। मंदिर बना था, मोहल्ले (में)। तो वो मेरे पास आया कि हमारे यहाँ नया मंदिर बना है, तो दर्शन करने

के लिए ज़रूर आओ। तो मैंने कहा कि शाम को भोजन करके हम ७-७.३० बजे पुहुचेंगे। तो वहाँ गए। बहुत सब मुमुक्षु, जैन भाई, अपने साधर्मी भाई-बहन बैठे थे। तो मैंने कहा कि ये प्रतिमा का दर्शन करने का जो व्यवहार है, उसका कारण क्या है? आप लोग जानते हैं? (तो सबने कहा) कि नहीं। हम तो बस दर्शन करने को आते हैं। दर्शन करने से तो धर्म होता है, इसलिए हम आते हैं। ठीक है! तो मैंने कहा, उसमें रहस्य है। प्रतिमा की स्थापना में रहस्य है। समझे? स्थापना-निक्षेप है। नय का विषय है, स्थापना-निक्षेप। समझे?

तो मैंने कहा, एक दृष्टांत दिया। कि सुनो! ये रिवाज कहाँ से आया और उसमें कितना लाभ है? लाभ है, नुकसान नहीं है। अच्छा! तो क्या लाभ है?

मैंने कहा कि ऐसा हुआ कि जंगल में वो सिंह है ना, सिंह सिंहण, तो उसने बच्चा दिया। तो वो बच्चा छूटा पड़ गया (सिंह के झुण्ड से अलग हो गया)। वो छूटा पड़ गया, माता से और एक भरवाड़ को, भेड़ को, भेड़ है ना, भेड़। हाँ! बकरी, भेड़-बकरी को चराता था, तो वो बच्चा उसमें (भेड़-बकरी के झुंड में) घुस गया। तो भरवाड़ ने देखा कि यह बच्चा भूला पड़ गया है। ठीक है! हम तो इसको भी पालते हैं, तो उसको भी पाल लेंगे। इसमें क्या है? समझे? आहिस्ता-आहिस्ता बच्चा बड़ा होने लगा। बच्चा बड़ा होने लगा।

एक दफ़े ऐसा बनाव बना कि वो बच्चा तो उसमें (झुंड में) था। मगर किसी पहाड़ की टेकरी से किसी सिंह ने देख लिया, पहाड़ पर। पहाड़ पर से देखा। अरे! ये तो हमारी जाति का है। ये सिंह, ये भेड़ में क्यों आ गया? समझे? रहस्य है दृष्टांत में। हाँ! मर्म की बात अभी आएगी। अच्छा! तो अभी उसको छुड़ाने के लिए क्या करें? उसको विचार आ गया। समझे? वो मेरी जाति का है और भेड़ में फँस गया है। उसको छुड़ाना है। उसने सिंह ने त्राड (दहाड़) दिया पहले कि, पहले मेरे सामने देख; मेरे सामने देखने के बाद में तेरे सामने देख। बस इतना कहा! तो उसने ऐसा चेष्टा से देख लिया, उसका रूप। उसका रूप देखकर इधर देखा। अरे! कूदकर भाग गया। निकल गया। अरे! मैं तो सिंह की जाति का हूँ। समझे? भेड़ की जाति मेरी नहीं है।

ऐसे प्रतिमा को, अरिहंत के द्रव्य–गुण–पर्याय को जानने से, ऐसा ही मैं आत्मा हूँ, ऐसा जो जानता है, उसको मोह क्षय हो जाता है। तो सम्यग्दर्शन में प्रतिमा को निमित्त कहा जाता है। इसलिए प्रतिमा की स्थापना है। ऐसे (ही स्थापना) नहीं है। रहस्य है उसमें। ऐसा-ऐसा नहीं करना। आहाहा! प्रभु! चेतन द्रव्य आपका, आप में चैतन्य गुण है और केवलज्ञान प्रगट आपको हो गया। मैं भी चेतन, चैतन्य और चिद्विवर्तन, उपयोग मेरा लक्षण है। आप केवलज्ञान के द्वारा आत्मा को जानते हो। और मैं मेरे ज्ञान के द्वारा आत्मा को जानता हूँ। उनको जानकर इधर ज्ञान जाता है, तो वहाँ खड़ा होते हुए सम्यग्दर्शन हो जाता है। बोलो! ये दर्शन की विधि है। समझे? ये दर्शन की विधि है। ऐसा दर्शन करके बाहर निकलता है। सम्यग्दर्शन तो हुआ नहीं। (तो) क्यों नहीं हुआ? (क्योंकि) उसको ही मात्र देखता है। उसके साथ मिलान करके, ऐसा ही मैं हूँ, इधर देखता नहीं है। तो ये सम्यग्दर्शन में निमित्त होता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षुः- दिल्ली में तो एक मंदिर में लिखा हुआ है वेदी के ऊपर, 'तुम निरखत मोको मिली मेरी

संपत्ति आज।'

उत्तर:- तुमको देखकर मुझे मेरी संपत्ति मिल गयी। आहाहा! अरिहंत के द्रव्य–गुण–पर्याय को जानकार, ऐसे अपने आत्मा को जो जानता है, उसका मोह का क्षय हो जाता है। ऐसा प्रवचनसार शास्त्र है उसकी ८० नंबर की गाथा में, कुंदकुंद आचार्य भगवान ने खुद ने वो बात उसमें लिखी है कि प्रतिमा का दर्शन का कारण (क्या है)? (कि) अपने दर्शन करने हेतु जाता है। मेरा सारा दिन दाल के व्यापार में गया, शाम हो गई, विस्मरण हो गया, आत्मा का विस्मरण और आत्मा को बतानेवाली प्रतिमा का भी विस्मरण (हो गया)। तो शाम को (प्रतिमा का) दर्शन करने जाता है। आहाहा! उसको देखकर आत्मा का स्मरण हो जाता है। (पहले) उसको देखा, बाद में, ऐसा ही मैं हूँ, ऐसा आत्मा का स्मरण करना चाहिए। उसका दर्शन करके चले जाना, ये प्रतिमा (के ऐसे) दर्शन में लाभ होता नहीं है। शुभभाव होता है, शुभभाव होता है। होता है शुभभाव, आत्मदर्शन नहीं होता है। अभी तू जाए ना भगवान के सामने, (तो) दर्शन करने बाद में इधर देखना। पहले उधर देखना, बाद में इधर देखना। वो सिंह के बच्चे ने क्या किया? पहले उधर देखा, बाद में इधर देखा, तो सिंहवृत्ति हो गई। आहाहा! सिंहवृत्ति हो गई। वीर की संतान! हम वीर की संतान हैं। आहाहा! ऐसी बात है। टाइम हो गया। इंदौरवाले लोग बहुत खुश हो गये।